स्त्री मुक्ति: सामर्थ्य और सीमा

Shiksha Rani*

M.A. in Hindi, B.ed. UGC NET (Hindi)

***सार -** स्त्री मुक्ति या स्त्री-विमर्श का तात्पर्य पुरुष वर्चस्व, पुरुष-दर्प, पुरुष-मानस की विकृत सोच से सभी की मुक्ति है, न कि स्त्री-पुरुष संबंधों से उसकी मुक्ति। संसार और समाज को यदि बने रहना है, तो वह स्त्री-पुरुष सहभागिता में ही बना रह सकता है। मुक्ति की बात करने और उसके लिए उद्यमशील होने से पहले जरूरी है कि मुक्ति को उसके समूचे निहितार्थों और सही आशय में जाना और समझा भी पाए। इतिहास गवाह है कि मुक्ति की सही समझ के अभाव में, हाथों में उठाए गए मुक्ति के झंठे बदत्तर गुलामी के झंडे साबित हुए हैं। हमारे अपने समय में बाजार और उसका प्रचार तंत्र अपनी जिस अपसंस्कृति के साथ हम पर हावी हैं, समाचार पत्रों के पन्नों पर, दूरदर्शन के पर्दे पर और सामाजिक जीवन में भी उसकी जो शक्ल हम देख रहे हैं, मुक्ति की आत्मछलना में जी रही तथाकथित मुक्त स्त्री के, उसकी देह गाथा के जिन विवरणों से हम गुजर रहे हैं- जरूरी है कि मुक्ति को उसके सही आशयों में बाजार के महाप्रभुओं के इशारों पर स्त्री देह की नुमाइश स्त्री मुक्ति नहीं, आत्मछलना है।*

---------------------------------X--------------------------------

सत्य की जाँच-पड़ताल और अपनी बात हम अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (संयुक्त राष्ट्र) की एक रिपोर्ट से शुरू करना चाहते हैं जिस में लिखा है कि “दुनिया की 98 प्रतिशत पूँजी पर पुरुषों का कब्जा है। पुरुषों के बराबर आर्थिक और राजनीतिक सत्ता पाने में औरतों को भी अभी हजार वर्ष और लगेंगे।”[1] पितृसत्तात्मक समाजों में अब तक यह पूँजी पीढ़ी-दर-पीढ़ी पुरुषों को पुत्राधिकार में मिलती रही है, आगे भी मिलती रहेगी। आश्चर्यजनक है कि श्रम के अतिरिक्त मूल्य को ही पूँजी माना जाता है मगर श्रम की परिभाषा में घरेलू श्रम या कृषि श्रम शामिल ही नहीं किया जाता। परिणामस्वरूप आधी दुनिया के श्रम का अतिरिक्त मूल्य यानी पूँजी को बिना हिसाब-किताब के ही परिवार का मुखिया या पुरुष हड़प कर जाते हैं। सारी दुनिया की धरती और (स्त्री) देह यानी उत्पादक और उत्पत्ति के सभी साधनों पर पुरुषों का सर्वाधिकार ‘सुरक्षित’ हैं। उत्पादन के साधनों पर कब्जे के लिए उत्तराधिकार कानून और उत्पत्ति यानी स्त्री देह पर स्वामित्व के लिए विवाह संस्था की स्थापना बहुत सोच-समझकर की गई है।

उत्तराधिकार के लिए वैध सन्तान के लिए वैध विवाह होना अनिवार्य है। विवाह संस्था से बाहर पैदा हुए बच्चे नाजायज, अवैध हरामी और बास्टर्ड कहे-माने जाते हैं। इसलिए पिता की सम्पत्ति के कानूनी वारिस नहीं हो सकते। हाँ! माँ की सम्पत्ति (अगर हो तो) में बराबर के हकदार होंगे। न्याय की नजर में वैध संतान सिर्फ पुरुष की और अवैध संतान केवल स्त्री की होती है। ‘वैध-अवैध’ बच्चों के बीच यही कानूनी भेदभाव (सुरक्षा कवच) ही तो है, जो विवाह संस्था को विश्वभर में अभी तक बनाए-बचाए हुए हैं वैध संतान की सुनिश्चितता के लिए यौनसुचिता, सतीत्व, नैतिकता, मर्यादा और इसके लिए स्त्रीदेह पर पूर्ण स्वामित्व तथा नियंत्रण बनाए रखना पुरुष का ‘परम धर्म’ हैं।

विवाह संस्था में पत्नी, पति की संपत्ति भी है और ‘घरेलू गुलाम’ भी। एकल विवाह सिर्फ स्त्री के लिए ही नियम है, पुरुष के लिए नहीं। व्याभिचार के कानूनी प्रावधानों के कारण ही समाज में व्यापक स्तर पर वेश्यवृत्ति और कॉलगर्ल व्यापार फल-फूल रहा है। मतलब विवाह संस्था में स्त्री-पुरुष की ‘सम्पत्ति’ है और विवाह संस्था से बाहर ‘वस्तु’। परित्यक्ता स्त्री की यथार्थ स्थिति को केन्द्रित करते हुए डॉ. हरीदास शेण्डे जी ने ठीक ही लिखा है- ‘परित्यक्ता शब्द नारी के लिए गाली जैसा है। पति में कमी होने पर भी, उसके अन्यत्र अनुरक्त होने पर भी, उसके दुर्व्यवहार करने पर भी, उसके नशाखोरी करने पर भी, उसके लालची और विलासी होने पर भी, नारी को उसके दहलीज से ही चिपक कर बैठा रहना चाहिए कुछ इस प्रकार की मान्यता है इस समाज की।’[2] उत्तराधिकार कानूनों के माध्यम से पूंजी और पूंजी के आधार पर राजसत्ता, संसद, समाज, सम्पत्ति, शिक्षा और कानून व्यवसथा-सब पर मर्दों का कब्जा है। नियम, कायदे-कानून, परम्परा, नैतिकता, आदर्श और नया सिद्धान्त-सब पुरुषों ने ही बनाए हैं। हमेशा अपने वर्ग हितों की रक्षा करते हुए। ‘भ्रूण हत्या’ से लेकर ‘सती’ बनाए जाने तक प्रायः सभी कानून महिला कल्याण के

www.ignited.in

नाम पर सिर्फ उदारवादी-सुधारवादी मेकअप ही दिखाई देता है।

यहाँ से सोचना शुरू करो तो पितृसत्ता रोज नया 'मुखौटा' लगा सामने आ खड़ी होती है। कुछ समझ ही नहीं आता कि कहाँ, कैसे, क्या और क्यों हो रहा है? कौन है इस नौटंकी का सूत्रधार? दिखता, सुनता कुछ है और अर्थ-अनर्थ कुछ और। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता'..... शाबाश! सुष्मिता, ऐश्वर्य, डायना, युक्ता.... घर में बुर्का, बाजार में बिकनी...। रोटी, कपड़ा और मकान... परिवार नियोजन... हम दो, हमारे दो... बेटी नहीं चाहिए। जनसंख्या नियंत्रण का उद्देश्य-स्त्री की कोख पर नियंत्रण, यौन क्रांति (निरोध, गोली, गर्भपात)...। 'दूसरी ओर आज के समाज में दहेज की बढ़ती हुई माँग ने तो कन्या भ्रूण हत्या को इतना सींच दिया है कि वह पौधे से बढ़कर एक वटवृक्ष की भाँति प्रकट हो गई है जिसकी शीतल छाया में पुत्री विहीन माता-पिता चैन की नींद सोना चाहते हैं मगर यह वटवृक्ष की शीतल छाया नहीं वरन् मीठा जहर जरूर है जो शनैः शनैः पूरे समाज व राष्ट्र में फैलता जा रहा है।'[3] खैर, जब राजसत्ता की पंचवर्षीय योजनाएँ विफल हो गई और सरकार रोटी, कपड़ा, शिक्षा, स्वास्थ्य और जीवन के लिए अनिवार्य न्यूनतम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों ने सलाह दी कि संकट की इस घड़ी का सामना करने के लिए 'जनसंख्या नियंत्रण' परम आवश्यक हैं, वरना...। जनसंख्या नियंत्रण का मतलब है, स्त्री की कोख पर नियंत्रण। कोख पर नियंत्रण के लिए निरोध उपकरणों और गोलियों के आविष्कार पर कुछ लाखों-करोड़ों रुपए खर्च करना कोई बड़ी बात नहीं थी। इसी महाअभियान का एक महत्त्वपूर्ण हथियार था गर्भपात कानून जिसने स्त्री की दुनिया ही बदल डाली।

परिवार नियोजन योजनाओं का परिणाम यह हुआ कि बेटियों की संख्या लगातार घटती गई क्योंकि हर परिवार को अनिवार्य रूप से सिर्फ पुत्राधिकारियों की ही जरूरत थी। बेटों को प्राथमिकता मिली और 'एमलिनयोसैंटोसिस टैस्ट' ने बेटियों का गर्भ में ही गला घोंट दिया। वैसे प्रश्न यह है कि शिक्षा, जागरूकता, साधन और स्वास्थ्य सेवाओं में तो अभूतपूर्व वृद्धि हुई हैं तो फिर लड़कियों की संख्या लगातार कम क्यों होती चली गई? दरअसल निरोध, गोलियाँ और गर्भपात के कानूनी अधिकार देने का मुख्य उद्देश्य, औरत की कोख पर नियंत्रण करके राष्ट्र की जनसंख्या का नियंत्रण करना भी था और स्त्री को पुरुष के 'आनन्द की वस्तु' बनाना भी।

कौमार्य बचाए रखने के लिए स्त्री घर में कैद होकर रहे या घर से बाहर निकलने की कामना हो तो निरंतर बलात्कार... हत्या... का भय झेलती रहे? हालांकि सुरक्षित कहीं नहीं है। सती-सावित्री बने रहना है तो 'चेस्टिटी बेल्ट' या बुर्का या घूंघट पहने रहें। यौन स्वतंत्रता चाहिए तो 'खतरनाक औरत' या 'छिन्नमस्ता' होने-कहलाने की हिम्मत तो बटोरनी ही पड़ेगी। घर और बाजार के बीच चुनाव, अभी भी स्त्री को ही करना है। घर का सुख-सुरग चाहिए यो बेघर होने की सजा-फैसला खुद कर ले। बस यही है चुनाव का अधिकार और निर्णय की आजादी। कौमार्य भंग होने का अर्थ 'जीवन बरबाद' होना है। विवाह तक कौमार्य बचाए रखने की सीख, सचमुच स्त्री को घर में कैद रखने और परम्परागत परिवार और विवाह संस्था में स्त्री पर पुरुष का अधिकार बनाए-बचाए रखने के लिए ही दी जाती है। सीख, आदेश, उपदेश का वास्तविक उद्देश्य स्त्री को निरन्तर बर्बाद होते दिखाते रहना ही है। सावधान! आगे खतरा है।

स्त्री मुक्तान्दोलन के प्रभावों-दबावों के कारण सुधारवादी-उदारवादी-संशोधनवादी 'मेकअप' जरूर हुआ परन्तु उससे न परिधि पर स्त्री की स्थिति बदली और न अन्य संकट कम हुए। शिक्षा और आर्थिक स्वतंत्रता के आधार पर, नारी मुक्ति का सपना देखने-देखाने वाले सिद्धान्तों को ही लकवा मार गया। महिलाओं की समस्या पहले से अधिक गंभीर और जटिल हो गई। परिणामतः शोषण दोहरा। जिम्मेदारी दौगुनी। अधिकार शून्य। गत वर्षों में परिवार के भीतर-बाहर यौन-हिंसा, लूट, दमन, शोषण और उत्पीड़न से बचने के लिए मध्य-वर्गीय स्त्री परिवार या विवाह संस्था की 'घरेलू गुलामी' स्वीकार रही है। लेकिन परिवार में भी हिंसा, भ्रूण-हत्या, दहेज-हत्या, आत्महत्या, बलात्कार, यौन शोषण और उत्पीड़न कम नहीं अजीब दुष्चक्र है। 'वस्तुतः पारिवारिक जीवन के प्रसंग में हमारी समस्त मान्यताएँ ही अत्यधिक दोषपूर्ण है। पारिवारिक जीवन के टूटने पर स्त्री को अधिक दोषी ठहराया जाता है, पुरुष को कम। पुरुष की चारित्रिक कमजोरी के लिए उसे सहम क्षमा कर दिया जाता है, लेकिन स्त्री की चारित्रिक कमजोरी के लिए उसे कभी क्षमा नहीं किया जाता।'[4] घरेलु गुलामी से मुक्ति की तलाश में निकली औरत के पास जीवन यापन के लिए श्रम है या शरीर। निम्न-वर्ग की स्त्रियों के लिए तो मेहनत-मजदूरी करना आर्थिक विवशता ही है। वेतन या मजदूरी तक पुरुष के बराबर नहीं मिलती, ऊपर से यौन शोषण अलग। भ्रूणहत्या से सती तक, आधे अधूरे कानून और उनकी भी सारी व्याख्याएँ पुरुष हितों को पोषित करती हुई। कौन सुनता-मानता हे अदालती आदेश और विधि आयोग के संशोधन सुझाव? संविधान की समीक्षा करेंगे, जो संभव ही नहीं।

वैसे 1950 के बाद भारतीय समाज में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और पारिवारिक स्तर पर संविधान, कानून, शिक्षा और जनचेतना के कारण व्यक्तिगत सम्बन्धों और परम्परागत विवाह संस्था के स्वरूप, स्वभाव और स्थितियों में निरंतर परिवर्तन भी हुआ है। शहरीकरण, औद्योगिकरण

www.ignited.in

और आर्थिक दबावों की वजह से संयुक्त परिवारों के टूटने-बिखरने की सामाजिक और ऐतिहासिक प्रक्रिया पहले से अधिक तेज हुई और 'छोटा परिवार-सुख का आधार' माना जाने लगा। शिक्षित स्त्रियाँ भी घर से बाहर निकल नौकरी या अन्य काम-धंधा करने लगी। परिवार की प्रतिष्ठा के प्रश्न व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अधिकारों के सामने गौण होते गए और परिणामस्वरूप मध्यवर्गीय एकल परिवारों में पति-पत्नी के बीच तनाव या एक दूसरे से मुक्त होने की इच्छा, आकांक्षा या विवशता कोर्ट कचहरी तक पहुंचने लगी। अदालतों में लगातार बढ़ते तलाक, गुजरात-भत्ता, बच्चों का संरक्षण, दहेज, स्त्रीधन, मानसिक यातना आदि मुकद्दमें विवाह संस्था की मौजूदा स्थिति और भविष्य के लिए आज 'प्राइवेट लाईफ' का मतलब है व्याभिचार और सिंदूरी सम्बन्धों से बाहर, हर सम्बन्ध अनैतिक, पाप और अक्षम्य अपराध। एकल विवाह या सम्बन्ध के सारे प्रतिबंध सिर्फ स्त्री के लिए है। पुरुष के लिए व्याभिचार की खुली वैधानिक छूट। रखैल, रक्षिता, वेश्या, कॉलगर्ज सब उसी के आनंद की संस्थाएँ हैं। पूँजी के शर्मनाक खेल में औरत को भोग-उपभोग की 'सुन्दर' वस्तु बनाया जा रहा है। एक और पोर्नोग्राफी के माध्यम से नपुंशक होते पुरुषों की कामवासना का आनंद बाजार बढ़ रहा है, दूसरी ओर नारी विरोधी यौन अपराधों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। होगी ही, क्योंकि जैसे-जैसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकारों की आड़ में अश्लीलता बढ़ेगी, वैसे-वैसे हिंसा भी। पर्दे पर बढ़ी यौन हिंसा का सीक्षा प्रभाव समाज में प्रतिध्वनित हो रहा है। स्त्री देह के सौन्दर्य का व्यवसायीकरण, निःसंदेह उन्हें 'शो गल्ज' बनाने के लिए ही उत्प्रेरित करेगा, करता रहेगा। 'कलयुग के नारी अत्याधिक बनने की चाह में फैशन, सिनेमा, होटल, नाच, डिस्को और क्लब पार्टियों की ओर आकर्षित हो रही हैं जो उसकी छवि को बिगाड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।'[5] किन्तु उसे भी सत्ता में हिस्सा चाहिए था ओर उसके पास हथियार के रूप में सिर्फ उसकी देह है। क्योंकि देह उसकी है, इसलिए वह उसका इस्तेमाल करने के लिए स्वतंत्र है- वह फिल्मों में, राजनीति में, उद्योग में, सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में देह की कीमत वसूल करती रहेगी।

स्त्री को देह के हथियार से 'सत्ता में हिस्सा' कितना मिला या मिल पाया-हम सब अच्छी तरह जानते हैं। पुरुष को इस भयावह खेल में स्त्री की सहमति का निर्णय वह स्वयं ले रही है या सिक्का (रुपया, डॉलर, पौंड)? देह के अर्थशास्त्र में स्वेच्छा और स्वतंत्रता का निर्णायक आधार बिन्दु क्या है? देह के व्यवसाय का मुनाफे और 'देह की कीमत' के बीच क्या अंतर्संबंध है? खेल के नियम, शर्तें और चुनाव प्रक्रिया कौन निर्धारित कर रहा है? बहुराष्ट्रीय पूंजी के सामने सुन्दर स्त्री के विरोध, प्रतिरोध और मोलभाव का क्या कोई मतलब है? उद्योगपतियों द्वरा पहले से तय कीमत पर, जब हजारों विश्व सुन्दरियों को लाईन लगाकर देह प्रदर्शन के लिए लाकर खड़ा कर दिया जाता हो, तब राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय दलालों के हाथों में नाचती कठपुतलियाँ या सुन्दर गुड़िया सिर्फ वस्तु, माल या साधन भर होती है। खरीददार की शर्तों पर खेल-वेल में, सुन्दरी की हार पहले से ही निश्चित है। हार में ही जीत का एहसास कब तक बना रह सकता है? आज जो टॉप हीरोईन है या मानी-समझी जा रही है, कल वही नायिका गुमनाम मौत मारी जाएगी। मार्लिन मूनरो से लेकर पामेला बोर्डस और डायना तक, सुन्दर स्त्रियों की व्यथा-कथा कौन समझ-समझा सकता है? सुन्दर की उपयोगिता तब तक है, जब तक सौन्दर्य (देह) कायम है।

पिछले दो दशकों में (भारत में) हजारों समाज सेवी संस्थाओं की स्थापना, गोष्ठी, सेमिनार और अरबों रुपये की सरकारी, गैर-सरकारी, देशी-विदेशी मदत, अनुदान और योजनाओं का कुल परिणाम क्या है? क्या भारतीय समाज में आम औरतों की स्थिति में कोई गुणात्मक सार्थक बदलाव आ पाया है? इस दौरान है कोई राष्ट्रीय-प्रांतीय स्तर का बड़ा नारी आंदोलन? आम भारतीय औरतों विशेषकर ग्रामीण औरतों की हालत हर जगह पहले से बदततर हुई है। साक्षरता अभियानों का भी असली मकसद स्त्रियों को शिक्षित और जागृत करना नहीं बल्कि सिर्फ इतना साक्षर कि वे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के ब्रांड पहचान-खरीद सके। पूंजी के नए खेल में अधिकांश स्वयं सेवी संस्थाओं के संस्थापक साम्राज्यवाद पितृसत्ता के हाथों में नाचती वो कमजोर कठपुतलियाँ हैं, जो स्थानीय परिवार के मुखिया के काबू नहीं आ ही थी। इन्हें अगर समाज सेवा के सुविधाजनक और समृद्धि के सपने नहीं दिये जाते, तो कहना न होगा कि इनका रोध या विद्रोह कहीं कुछ और 'गुल' खिलाता... 'जहर' फैलाता। आम समाज के स्टेरियोटाईप नर-नारी को अपनी-अपनी रोजी रोटी के संघर्ष से ही फुर्सत नहीं है। पितृसत्तामक की परेशानी यह है कि उसे अने आधुनिकतम उद्योग और अन्य समस्याओं को संभलने-सुलझाने के लिए स्वतंत्र स्त्री-पुरुष (एंटी स्टेरियोटाईप) चाहिए, जो मॉडलिंग से लेकर समाजसेवी परियोजनाओं पर काम कर सकें। काफी जोखिम का काम है, इसलिए कीमत भी थोड़ी ज्यादा देनी पड़ेगी और वह भी इस रूप में कि कीमत न लगे। साथ 'सम्मान' भी जोड़ना पड़ेगा।

पितृसत्ता के इस चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए स्त्रियों ने जितना विरोध-प्रतिरोध किया है, उन पर उतना ही अधिक दमन, हिंसा और अत्याचार बढ़ता गया है। हत्या आत्महत्या-बलात्कार के आँकड़े गिनाने की जरूरत नहीं। मेरा स्पष्ट मानना है कि जब तक पितृसत्तात्मक पूँजीवादी समाज में व्यक्तिगत सम्पत्ति के उत्तराधिकार के लिए वैध पुत्रों की अनिवार्यता और परिवार

में पुरुष का अधिनायकवादि वर्चस्व बना रहेगा, तब तक ओरत की अस्मिता, अस्तित्व और व्यक्तित्व, अधिकार और अभिव्यक्ति, समानता और सम्मान का हर संघर्ष अधूरा और सारे घोषणापत्र बेमानी हैं।

इसमें कोई दो मत नहीं कि स्वतंत्रता के बाद नारी की स्थिति में सकारात्मक परिवर्तन आए हैं तथा उसकी स्वतंत्रता और अधिकारों के लिए जहाँ संविधान में व्यवस्था की गई है वहीं समय-समय पर नियम और कानून भी बनाए गए हैं। लेकिन यह भी एक सच्चाई है कि ये नियम और कानून मुख्यतः महानगरों की तथा उच्च वर्ग की महिलाओं तक ही सीमित है। ज्यादातर महिलाओं की संख्या आज भी द्वितीय श्रेणी की है। जो पढ़ी-लिखी और नौकरी पेशा महिलाएँ हैं उनका दुहरा शोषण होता है। उन पर घर की जिम्मेदारियों के साथ-साथ कार्यालय की भी जिम्मेदारी है। आज जरूरत है तो केवल उस शिक्षा योजना की जो प्रत्येक गाँवों में पहुँचकर नारियों को अपनी स्थिति, अपने अधिकार एवं अपने कत्र्तव्यों का पूर्ण ज्ञान करा सके, समाज के उदार दृष्टिकोण की जिससे वह अपने जीवन को सही रूप से चरितार्थ कर सकने में सक्षम हो सके, पुरुष हृदय में नारी के प्रति उसे आगे बढ़ाने में सहयोग देने की। अगर सामाजिक संस्थाओं के साथ-साथ प्रत्येक नागरिक नारी को आगे बढ़ाने में जब सहयोग देगा तभी नारी रूढ़िवादिता एवं परम्पराओं के बन्धनों से मुक्त हो पाएगी तथा सही मायने में पुरुष की शक्ति बन पाएगी। आज हमारा देश नारी में वही सात्विक भावना, तेजस्विता एवं कत्र्तव्यनिष्ठा का एक साथ दर्शन करना चाहता है जिससे भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल पृष्ठ सहज आंका जा सके।

संदर्भ

1. हिन्दी उपन्यास: नारी विमर्श, शोभा वरेकर, पृ. 51
2. नारी सशक्तिकरण: डॉ. हरिदास शेण्डे, पृ. 23
3. भ्रूण-हत्या और महिलाएं: मंजू गुप्ता, पृ. 94
4. मानवाधिकार सिद्धान्त एवं व्यवहार: डॉ. विनोद वैरागी, पृ. 151
5. नारी सशक्तिकरण: डॉ. हरीदास शेण्डे, पृ. 42

Corresponding Author

Shiksha Rani*

M.A. in Hindi, B.ed. UGC NET (Hindi)